वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये जुलाई २०१४

कुल पृष्ठ संख्या 20, वजनः 40 ग्राम

प्रकाशन तिथिः 4 जुलाई 2014

अन्तःपथ

प्रशंसा और प्रोत्साहन से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। *(डॉ० जगदीश गांधी, लखनऊ)*	३ से ५
आर्यों के सम्माननीय श्रद्धेय प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' *(श्री मनमोहन कुमार आर्य,)*	६ से ११
धर्म शब्द का मूल अर्थ *(डॉ. पूर्ण सिंह डबास)*	१२ से १८

पैर की मोच और छोटी सोच, हमें आगे बढ़ने नहीं देती।

टूटी कलम और औरों से जलन, खुद का भाग्य लिखने नहीं देती।

काम का आलस और पैसों का लालच, हमें महान् बनने नहीं देता।

अपना मजहब ऊँचा और गैरों का ओछा, ये सोच हमें इन्सान बनने नहीं देती।

दुनिया में सब चीज मिल जाती है, केवल अपनी गलती ही नहीं मिलती।

गीता फैल गई

दो साधु एक स्थान पर रहा करते थे। दोनों को संसार से बड़ा ही वैराग्य था। एक गीता की पुस्तक उनके पास थी।

एक दिन एक साधु वहाँ से चलने लगा तो दूसरे ने कहा 'आप तो जाते ही हैं, यह गीता मुझे देते जाइये, मैं इसी का पाठ करके दिन काटा करूँगा।'

दूसरा साधु गीता देकर चला गया।

एक दिन किसी चूहे ने गीता की पुस्तक की जरा-सी नोक काट दी। साधु ने जो यह देखा तो सोचा कि यहाँ चूहे आ गये हैं, अतः उनसे रक्षा के लिए एक बिल्ली पाल ली। अब बिल्ली के लिए दूध की आवश्यकता पड़ी। कुछ दिन तो माँगकर काम चलाते रहे, बाद में कहीं से दान में एक गाय मिल गई तो उसे पाल लिया। कुछ दूध बिल्ली को पिलाते, शेष स्वयं भी पी लेते और गाय की खूब सेवा करते। जब दूध पी-पीकर तगड़े हुए तो सोचा कि एक सेवक चाहिये जो गाय की सेवा किया करे।

अचानक उन्हीं दिनों एक अनाथ स्त्री इनके पास आ पहुँची और बोली, 'स्वामिन्! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई सहायक नहीं। यदि आज्ञा हो तो यहीं पड़ी रहूँ। आपकी तथा गाय की सेवा किया करूँगी और बचा-बचाया खाकर अपना निर्वाह किया करूँगी।'

साधु जी तो ऐसा चाहते ही थे। उन्होंने उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया और मौज-मस्ती से रहने लगे। दो-तीन साल में दो बच्चे भी हो गये और साधु जी पूरे गृहस्थ बन गये।

एक दिन साधु जी कहीं जा रहे थे। एक पुत्र कंधे पर सवार था, एक का हाथ पकड़े थे कि उसी समय वह पहले वाला साधु मिल गया, जिसने उन्हें गीता की पुस्तक दी थी। उसने पहचानकर पूछा–'महात्मन्! यह क्या हाल है?'

साधु ने उत्तर दिया–'महात्मन्, गीता फैल गई!'

दूसरा साधु बोला–'भोले साधो! मनुष्य जितना सांसारिक विचारों को चित्त में स्थान देता है, माया उतना ही उसे अपने चक्कर में बाँधकर बुराई के गहरे गढ़े में गिरा देती है।'

शिक्षा–आवश्यकताओं को घटाने का यत्न करना चाहिए।

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६३ अंक १२ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, जुलाई, २०१४

सम्पा॰ **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व॰ **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

प्रशंसा और प्रोत्साहन से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है।

–डॉ॰ जगदीश गांधी, शिक्षाविद् एवं
संस्थापक-प्रबन्धक, सिटी मोन्टेसरी स्कूल, लखनऊ

(1) 'प्रेमभाव' (Love and affection) मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ पोषण:
प्रशंसा और प्रोत्साहन मनुष्य के लिए सबसे प्रमुख तत्व है। प्रशंसा और प्रोत्साहन का हमारे जीवन में चुम्बकीय प्रभाव होता है। असम्भव कार्य सम्भव में बदलने लगते हैं। मानवीय पोषण के कई अन्य तत्व भी हैं जो हमारे जीवन में काया पलट कर देते हैं। **मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ पोषण है प्रेमभाव यानी कि प्यार देना, लोगों को दिल से पसन्द करना,** सफलता की सर्वश्रेष्ठ आदत है।

(2) प्रेमभाव (Love and affection) लोगों की कार्यक्षमता को बढ़ाने में अत्यन्त ही सहायक :
लोगों के जीवन पर हम तभी प्रभाव डाल सकते हैं जब हम उनसे प्रेम करते हैं। मानवीय सम्बन्धों के मर्मज्ञ **जिन डार्नन** कहते हैं कि **'प्रेम के बिना कोई संबंध, कोई भविष्य और कोई सफलता आकार नहीं लेती।** जब कोई हम में आस्था और विश्वास व्यक्त करता है तो हम अपने में और अधिक आस्था और विश्वास अनुभव करते हैं जिससे हमारी कार्यक्षमता 10 से 50 गुना बढ़ जाती है।

(3) प्रेम से बड़ी कोई मानवीय शक्ति नहीं है :–
बीसवीं सदी के महान पुरुष गांधी जी की लोकप्रियता और सफलता का मुख्य रहस्य छोटे से छोटे इंसानों से भी प्रेम करना और सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलना ही था। दरअसल, **प्रेम मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति की वाह्य अभिव्यक्ति है और मानवीय गुणों में सर्वश्रेष्ठ गुण है।** इस सृष्टि में प्रेम से बड़ी कोई मानवीय शक्ति नहीं है।

(4) प्रेम जीवन का सार है:–

महान् चिंतक **चार्लर हुवले** ने ठीक ही कहा है कि **जब हम अपनी सोच में प्यार शब्द को आत्मसात कर लेते हैं, तो हमारे अन्दर असीम ऊर्जा और तीव्रता का प्रवाह होने लगता है।** हम इस संसार की हर वस्तु तथा हर इंसान से प्यार करने लगते हैं और हमारा जीवन पूर्णता में बदल जाता है। प्रेम जीवन का सार है, इंसान को इंसान से तथा अधिकारी को कर्मचारी से आपस में एक-दूसरे को जोड़ने का एकमात्र साधन है।

(5) विनम्रता, न्याय, प्रेम और आस्था के गुण लोगों को महान् बनाते हैं-

महान् चिंतक, लेखक और दार्शनिक की विश्व विख्यात पुस्तक **"थिंक एण्ड ग्रो रिच"** के लेखक **नेपोलियन हिल** का मानना है कि जो **लोग विनम्रता, न्याय, प्रेम और आस्था के गुणों से सम्पन्न होते हैं, वे अपने सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों का हृदय जीत लेते हैं।** ऐसे व्यक्तियों का सभी आदर और सम्मान करते हैं तथा उनकी आज्ञाओं का सहर्ष पालन करते हैं।

(6) नफरत और द्वेष हमारी सोच को दोषपूर्ण बना देती है :–

मनोवैज्ञानिक तथ्य हमें स्पष्ट करते हैं कि **जब हम किसी से नफरत या द्वेष करते हैं तो उस समय हमारी समस्त आन्तरिक सोच और भावनायें नकारात्मक और दोषपूर्ण हो जाती हैं।** प्रेम जिंदगी के काले बादलों के बीच में इन्द्रधनुष के समान है। यह सुबह और शाम का सितारा है। यह हृदय नामक अद्‌भुत फूल की सुगंध है। इसके पवित्र भाव और दैवीय आवेग के बिना हम पशु से भी निम्न स्तर पर पहुँच जाते हैं। लेकिन इसके होने पर धरती स्वर्ग बन जाती है और हम दैवीय स्तर पर पहुँच जाते हैं।

(7) प्रेम एक दैवीय उद्‌घोष है :–

संसार प्रेम की सुंदरता उधार लेता है और स्वर्ग इसकी महिमा उधार लेता है। **न्याय, संयम, परोपकार और करुणा प्रेम की संतानें हैं।** "प्रेम के बिना सारा यश फीका पड़ जाता है, संगीत अपना अर्थ खो देता है और सद्‌गुणों का अस्तित्व मिट जाता है।"

(8) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेम और त्याग का विशेष महत्व है :–

अगर हम उन मनुष्यों के जीवन पर दृष्टिपात करें जिन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर बना लिया है और जीवन में सर्वोच्च सफलता हासिल की है तो उसका मूल कारण है-प्रेम और त्याग की मूल भावना।

(9) दूसरों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करें :–

मनोचिकित्सक **आरीकियेव** ने कहा है, **"अगर आप यह चाहते हैं कि दूसरे आपका सम्मान करें तो आपको उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये।** हमेशा लोग उस व्यक्ति के प्रति अपना प्रेम, सम्मान और ध्यान प्रदर्शित करेंगे, जो उनकी इस आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

(10) सराहना सर्वश्रेष्ठ उत्प्रेरक :–

विश्व बैंक के पूर्व अध्यक्ष **राबर्ट मैकनामारा** कहते हैं कि "मस्तिष्क हृदय की तरह होते हैं, वे वहीं जाते हैं, जहाँ उनकी सराहना होती है।" किसी भी व्यक्ति को किसी कार्य के लिये श्रेय और पहचान दी जाती है तो उक्त व्यक्ति में उच्च कोटि का परिश्रम से कार्य करके आत्मसम्मान पाने की इच्छा प्रबल हो जाती है।

(11) अच्छे कार्य की प्रशंसा अवश्य करें :–

मनोवैज्ञानिक **जे.सी. सरेहल** ने कर्मचारियों की मानसिकता पर अनेक शोध किये हैं। सरेहल का मानना है कि **कर्मचारियों में असंतुष्टि और शिकायत करने का सबसे बड़ा कारण है कि उनके अधिकारी उन्हें किसी भी कार्य के लिए श्रेय नहीं देते।** लोगों के लिये किसी ऐसे व्यक्ति के पीछे चलना कठिना होता है जो उनमें रुचि नहीं रखता और उनके कार्य की सराहना नहीं करता।

(12) सबसे प्रेरणा सम्मान है सार्वजनिक सम्मान (Recognition) :-

किसी भी व्यक्ति में कोई अन्य पहलू इतना आत्मविश्वास, सम्मान और कुछ कर दिखाने का साहस एवं प्रेरणा नहीं भरता, जितना कि सार्वजनिक सम्मान (Recogniton)। निश्चित रूप से सार्वजनिक सम्मान किसी विशिष्ट कार्य करने पर उक्त व्यक्ति को दिया जाता है।

(13) प्रशंसा करने के किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दें :-

नेतृत्व और मानवीय गुणों पर आधारित दो महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक **मेजर जनरल ए.आर. न्यूमैन** का कहना है कि अच्छे नेतृत्व और सफलता के लिए अच्छे विचार, सही निर्णय तथा सुनिश्चित उद्देश्य का होना आवश्यक तत्व हैं। **जब आप अपने कर्मचारियों के साथ मीटिंग में हों तब प्रशंसा करने के किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दें।** इस समय आप उन्हें अत्यधिक महत्वपूर्ण होने तथा उन्हें बेहतर काम और उनके व्यवहार के लिए बेहद पसंद करने का एहसास दिला सकते हैं।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यतेः

'आर्यसमाज के महान्धन, शताधिक ग्रन्थों के प्रणेता, तपस्वी व समर्पित विद्वान् एवं सब आर्यों के सम्माननीय श्रद्धेय प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आर्य समाज की अग्रिम पंक्ति के विद्वानों व लेखकों में प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का नाम अन्यतम है। उन्होंने आर्य समाज के लेखन व प्रचार के क्षेत्र में जो कीर्तिमान स्थापित किया है वह आधुनिक पीढ़ी के युवकों व विद्वानों के लिऐ अनुकरणीय व प्रेरणादायक है। 82 वर्ष की उम्र में भी वह आर्य जगत् को अपने ज्ञान व अनुभव से लाभान्वित कर रहे हैं, यह ईश्वर की आर्य बन्धुओं पर महती कृपा है। सभी आर्यों की यह भावना व प्रार्थना है कि वह पूर्ण स्वस्थ रहते हुए आगामी और कई वर्षों तक अपने वैदिक व आर्य साहित्य के ज्ञान व अनुभव से नूतन ग्रन्थों की रचना करते हुए आर्य साहित्य को समृद्ध करते रहें। आज यदि कोई हमसे पूछे कि किसी सच्चे, आर्य सिद्धान्तों पर आचरण करने वाले, व्यर्थ की आलोचना व निन्दा-स्तुति से दूर रहते हुए, महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के कार्यों को आगे बढ़ाने में कौन व्यक्ति है जो तन, मन व धन से लगा हुआ है, जिसके पास आर्य समाज के इतिहास व साहित्य का सर्वाधिक ज्ञान व अनुभव है व महर्षि दयानन्द का सच्चा व पक्का अनुयायी है तथा जिसे उर्दू, फारसी व अरबी आदि भाषाओं का भी ज्ञान है और जिसने इस ज्ञान का उपयोग उर्दू-फारसी के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद कर आर्य जनता को उपलब्ध कराया है, **तो हम उसे आर्यों के सम्माननीय विद्वान् प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी का नाम ही बता सकते हैं।** शायद हमारे पास उनके अनुरूप कोई दूसरा सच्चा, ऋषिभक्त, आर्यसमाज का हितैषी, सर्वात्मा समर्पित व्यक्ति नहीं है। **वह सभी आर्यजनों के समान रूप से पूजनीय एवं सत्करणीय हैं।** हम कई बार विचार करते हैं कि यदि कोई प्रमुख व प्रसिद्ध व्यक्ति आर्य समाज से न जुड़ा होता तो क्या हो सकता था? **आर्य समाज के विद्वानों को मान-सम्मान व सत्कार तो मिलता ही है, उनकी सर्वत्र प्रशंसा व सराहना भी होती है। वह नाना प्रकार के पापों व बुराईयों से बच जाते हैं। पुरुषार्थ व कर्मानुसार ईश्वर से भोग व सुख की सामग्री तो प्राप्त होती ही है। उसका परजन्म भी सुधरता है। आर्य समाज में कोई भी पुरुषार्थी विद्वान् उपेक्षित नहीं होता है। अतः हमें लगता है कि जिन विद्वानों ने आर्य समाज को अपनाया व उसकी**

सेवा की, उन्हें इस कार्य के लिए प्रभूत सम्मान व ईश्वरीय व्यवस्था से सुख व शान्ति की प्राप्त होने के साथ भावी जन्मों में भी कल्याण व उन्नति का लाभ होता है। प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को पाकर आर्य समाज धन्य हुआ और हम समझते हैं कि आर्य समाज का अनुयायी बनकर वह भी धन्य हैं।

हम अपने एक पड़ोसी मित्र श्री धर्मपाल सिंह की प्रेरणा व प्रयासों से आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर लगभग 18 वर्ष की आयु में इसके अनुयायी बने। जब हम आर्य समाज में कुछ सक्रिय हुए तो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को पढ़ने के साथ हम इसके लेखकों को पत्र लिखने लगे। प्रा. जिज्ञासु जी के उत्तर प्राप्त होते तो हमें प्रसन्नता एवं गौरव की अनुभूति होती थी। अब हम उनके सभी लेख पढ़ने लगे और उनकी पुस्तकें भी जहां कहीं किसी पुस्तक विक्रेता से प्राप्त होतीं, ले लेते थे। इस प्रकार से 3 दर्जन से अधिक ग्रन्थों का संग्रह हमारे पास हो गया। उनकी ही प्रेरणा से फरवरी, 1997 में हम अपने 3 मित्रों सहित हिण्डौन सिटी में मनाये गये **'पं. लेखराम बलिदान शताब्दी समारोह'** में सम्मलित हुए थे। कादियां में वैदिक यति मण्डल, दीनानगर के तत्वावधान में जून, 1997 में मनाये गये **"पं. लेखराम बलिदान शताब्दी समारोह"** में भी हम अपने एक मित्र श्री राजेन्द्र काम्बोज, अधिवक्ता के साथ सम्मिलित हुए थे। हमारे पुराने संस्मरणों में 28 मई, 1997 को स्थानीय दैनिक समाचार पत्र 'दून दर्पण' में प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी पर **"देश, धर्म जाति के कल्याण को समर्पित : प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु"** एक लेख का प्रकाशन भी है। परोपकारिणी सभा, अजमेर में जब प्रा. जिज्ञासु व स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती का 75 वर्ष की आयु पूर्ण करने पर सम्मान किया गया तो उस अवसर पर भी हम वहाँ उपस्थित थे। इसी प्रकार से दिल्ली में आर्य जगत् की सबसे पुरानी प्रकाशन संस्था "विजयकुमार गोविन्दराम हासनानन्द, दिल्ली" द्वारा मनाये गये महोत्सव में भी हम पहुँचे थे जहाँ उस कार्यक्रम के आयोजन व संचालन में आपकी मुख्य भूमिका होने के साथ वहां प्रमुख वक्ता आप ही थे। इस बीच जब कभी आपकी किसी पुस्तक के प्रकाशन की जानकारी हमें मिलती तो उसे प्राप्त कर उसका अध्ययन कर लाभान्वित होते रहे।

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का जन्म 28 मई 1932 को जिला स्यालकोट (पाकिस्तान) के एक ग्राम मालोमहे में महाशय जीवनमल जी के यहां लगभग 82 वर्ष पूर्व हुआ था। आपके पिता ग्राम के प्रथम आर्य समाजी व्यक्ति थे। आपकी शिक्षा स्यालकोट, लेखराम नगर (कादियां), हिसार और चण्डीगढ़ में हुई। व्यवसाय के लिए आपने शिक्षा व अध्यापन का कार्य चुना। डी.ए.वी. कालेज,

शोलापुर में अध्यापन कार्य के साथ आप लेखन कार्य में भी प्रवृत्त रहे। **सन् 1965 में दीनानगर के स्वामी सर्वानन्द से आज्ञा लेकर आपने हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के फील्ड मार्शल स्वामी स्वतन्त्रतानन्द का शोध पूर्ण जीवन चरित्र लिखकर प्रकाशित किया।** निरन्तर अध्यापन कार्य करते हुए सन् 1992 में आप डी.ए.वी. कालेज, अबोहर से सेवानिवृत हुए। आपने अध्यापन, शोध, लेखन, प्रचार तथा आर्य समाज के संगठनात्मक कार्यों के साथ समय-समय पर सत्याग्रह एवं संघर्षों में भी भाग लिया। **सन् 1957 के पंजाब के भाषा स्वातत्र्य अर्थात् हिन्दी रक्षा आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया एवं कारवास में रहे। आपको 1958 में गुरुद्वारा सिगरेट के झूठे अभियोग में फंसाया गया और असहनीय यातनायें दीं गई।** आप साहित्यिक शोध के लिए तो यात्रायें करते ही रहे हैं, शुद्धि एवं वेद प्रचार के लिए आपने दक्षिण के सुदूरवर्ती स्थानों की यात्रायें भी की हैं।

कैप्टन देवरत्न आर्य अपने समय में महाराष्ट्र में आर्य समाज के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। फरवरी 1997 में हिण्डौन सिटी में जिज्ञासु जी की प्रेरणा से पं. लेखराम बलिदान शताब्दी समारोह का आयोजन किया गया। जिज्ञासु जी ने इस समारोह के सभी आयोजनों एवं सम्मेलनों की अध्यक्षता का भार कैप्टन देवरत्न जी को सौंप था। हिण्डौन आकर अपने उद्‌बोधन में उन्होंने जिज्ञासु जी की महानता का उल्लेख कर कहा कि वह जिज्ञासु जी के अनुरोध को आदेश मानकर, सहर्ष उसका पालन करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। हमें भी अपने स्थानीय मित्रों के साथ इस आयोजन में भाग लेने का अवसर मिला था। यह आयोजन अपने उद्देश्य में सफल रहा था।

जिज्ञासु जी का प्रत्येक लेख एवं पुस्तक खोजपूर्ण सामग्री से पूर्ण होती है। एक सौ से अधिक संख्या में आपकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ पुस्तकों के गुजराती, मराठी, उड़िया, कन्नड़, और मलयालम आदि में अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी एवं उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं में आपके मौलिक, शोधपूर्ण एवं ऐतिहासिक तथ्यों तथा प्रमाणों से पूर्ण लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं। आर्य जगत में विगत एक सौ वर्षों में हुए महापुरुषों में अधिकांश विद्वानों की खोजपूर्ण जीवनियां लिखकर आपने यश अर्जित किया है। जीवन साहित्य पर आप प्रमाणिक लेखक माने जाते हैं। रक्तसाक्षी पं. लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय, लाला लाजपत राय, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द पं. रूलिया राम, पं. भद्रसेन, महाशय राजपाल, महात्मा हंसराज की प्रमुख जीवनियों के साथ अन्य महापुरुषों की जीवनियां, अभिनन्दन ग्रन्थ, सूक्ति संग्रह, कालजयी लेखों का उर्दू

से हिन्दी में अनुवाद, सम्पादन एवं प्रकाशन का कार्य भी आपने किया है। आर्य समाज के मनीषी विद्वान् पं. चमूपति के विलुप्त काव्य की 45 वर्षों तक निरन्तर खोज कर उनका काव्य-संगह **"हृदय की भाषा"** नाम से सम्पादित कर फरवरी, 1997 में प्रकाशित किया था। पं. चमूपति पर विचार वाटिका नाम से दो खण्डों में उनके जीवन-चरित एवं प्रमुख रचनाओं की खोज का श्रेय भी आपको ही है। **जिज्ञासु जी गीतकार भी हैं।** आपका काव्य संग्रह भी भव्य साज-सज्जा के साथ "पुलकित हृदय" नाम से प्रकाशित है। पं. लेखराम जी के जीवन पर जो प्रचुर शोधपूर्ण साहित्य आपने दिया है उससे इतिहास में आपका अमर स्थान बन गया है। आप सफल लेखक व सम्पादक होने के साथ स्वाभिमानी प्रकाशक भी हैं। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द शोध संस्थान, अबोहर की स्थापना कर इसके माध्यम से अपने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आपके लेखकीय, सम्पादन, प्रकाशन, प्रचार व संगठनात्मक आदि कार्यों के लिए आपको अनेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। सन् 1989 में आपको हिण्डौन सिटी के घुड़मल आर्य साहित्य पुरस्कार तथा आर्य समाज मुम्बई के प्रथम मेघजी भाई पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। परोपकारिणी सभा व अन्य आर्य संस्थाओं से भी समय-समय पर आप सम्मानित हुए हैं।

सन् 1995 व उससे पूर्व से स्थानीय आर्य समाज में चल रहे विवादों के कारण हम स्वाध्याय व लेखन में अधिक तत्परता से जुड़े। एक बार हम अमर स्वामी जी पर एक लेख लिखना चाहते थे। इसके लिए हमने स्वामीजी पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ को प्राप्त किया। हमें पता चला कि श्री जिज्ञासुजी ने भी स्वामीजी की मृत्यु पर अपनी श्रद्धांजलि के रूप में एक विस्तृत लेख लिखा था जो मासिक पत्रिका 'वेद प्रकाश' के अंक के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह लेख हमारे संग्रह में नहीं मिला। हमने 17-18 वर्ष पूर्व जिज्ञासुजी से इसके लिए अनुरोध किया। उन्होंने हमें अंक भेज दिया। इसकी एक फोटो प्रति कराकर हमने उनका अंक उन्हें लौटा दिया और इस समाग्री की सहायता से हमारा लेख पूरा हो गया जो स्थानीय व आर्य जगत् की एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। जुलाई, 1996 की बात है कि दिल्ली से प्रकाशित Hindustan Times में एक फ्रांसिसी विद्वान् का वैदिक मान्यताओं पर एक लेखक छपा। इसकी प्रति हमने जिज्ञासु जी को अवलोकनार्थ भेजी। उन्होंने हमारी इस सक्रियता पर आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा के 'सर्वहितकारी' पत्र में कुछ पंक्तियां लिखकर भेजी जो इस पत्र के 14 अगस्त, 1996 अंक में **'आर्य समाज के सजग प्रहरी'** शीर्षक से प्रकाशित हुई।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक आर्य जगत् के उच्च कोटि के विद्वान् व महर्षि

दयानन्द के अनोखे अनुयायी थे। आपने आर्य समाज व महर्षि दयानन्द के जीवन पर जो लेखन कार्य किया है वह प्रशंसनीय व अद्‌भुत है। सम्भवत: जब वह महर्षि दयानन्द के पत्रों व विज्ञापनों का सम्पादन कार्य कर रहे थे तो उन्होंने एक अपील की थी कि उर्दू जानने वाला कोई विद्वान् मास्टर लक्ष्मण आर्योपोशक के महर्षि दयानन्द पर उर्दू जीवन चरित का हिन्दी में अनुवाद कर दे अथवा यह न हो सके तो देवनागरी में लिप्यान्तर ही कर दें जिससे वह अपने ग्रन्थों में मास्टर लक्ष्मण जी के ग्रन्थ में उपलब्ध नवीन सामग्री का समावेश कर सकें। हमारे स्थानीय मित्र श्री धर्मपाल सिंह ने वह पंक्तियां पढ़ीं तो वह इसके लिए सक्रिय हो गये। उन्होंने पहले मा. लक्ष्मण आर्य जी का उर्दू जीवन चरित अपने एक मित्र से प्राप्त किया। देहरादून के एक उर्दू के जानकार को इसके अनुवाद कार्य के लिए सहमत किया और उसे जीवन चरित्र की प्रति व अनुवाद कार्य के लिए नये रजिस्टर व स्टेशनरी आदि देकर कार्य में प्रवृत होने के लिए अग्रिम व्यवस्था की। एक या दो महीने वह पुस्तक व स्टेशनरी उन महाशय के पास रही। बाद में उन्होंने अनुवाद कार्य में अपनी असमर्थता व्यक्त कर पुस्तक आदि सामग्री लौटा दी। इसके बाद भी कुछ प्रयास हमारे उस मित्र ने किये परन्तु वह सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इसके लिए हमने भी अपने स्तर पर विद्वानों से बातचीत की। कुछ पत्र आर्य पत्रिकाओं के सम्पादकों को लिखकर इस अनुवाद व प्रकाशन कार्य को सम्पादित करने के लिए अनुरोध किया। हमारी इस विषय पर डॉ. भवानीलाल भारतीय जी से भी बात हुई थी। उन्होंने प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी का नाम सुझाया था। हमने जिज्ञासु जी से भी निवेदन किया था परन्तु उन दिनों वह अन्य लेखकीय कार्यों में व्यस्त थे। स्वामी जगदीश्वरानन्द भी उर्दू के विद्वान् थे। उन्होंने पं. मनसाराम वैदिक तोप के उर्दू ग्रन्थों **"पौराणिक पोल प्रकाश"** व **"पौराणिक पोप पर वैदिक तोप"** ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया था जिनके प्रकाशित होने पर उनकी बहुत प्रशंसा हुई। अत: हमने समय-समय पर स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी ने भी मास्टर लक्ष्मण आर्य जी के ऋषि चरित का अनुवाद करने का अनुरोध किया। स्वामीजी इस कार्य में प्रवृत हुए। जब इस उर्दू जीवन चरित की विस्तृत भूमिका का अनुवाद हो चुका तो स्वामीजी ने अनुभव किया कि भूमिका अति महत्वपूर्ण है, इसक पृथक से भी प्रकाशन होना चाहिये। अनुवाद के कुछ समय बाद यह भूमिका आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक **"विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली"** से **"मत मतान्तरों का मूलस्रोत वेद"** नाम से 172 पृष्ठों में सन् 1999 में प्रकाशित हुई। स्वामीजी लेखन, सम्पादन, प्रकाशन व प्रचार आदि कार्यों में व्यस्त रहते थे। आगे वह कार्य कर सके या नहीं अथवा

आगे के कार्य का उन्होंने क्या किया, ज्ञात न हो सका। **सौभाग्य से प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी इस कार्य में प्रवृत हुए और लगभग 3 वर्षों की उनकी कठोर साधना व तपस्या का परिणाम सामने आ चुका है। यह अनुवाद कार्य पूरा होकर उन्हीं के प्रयासों से इसका प्रकाशन हुआ है, और यह ग्रन्थ दो खण्डों में उपलब्ध है। हम समझते हैं कि यह प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी की आर्य समाज को एक बहुत बड़ी देन है। इस कार्य से जिज्ञासु जी के गौरव में जो वृद्धि हुई है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।** अब हमारे पास महर्षि दयानन्द के जीवन चरित, अनेक विद्वानों–पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी सत्यानन्द, मास्टर लक्ष्मण आर्योपदेशक, श्री हरविलास शारदा आदि लिखित उपलब्ध हैं। अन्य मतों के संस्थापक या प्रणेता महापुरुषों के ऐसे प्रमाणिक जीवन चरित सम्भवत: किसी मत व सम्प्रदाय के पास नहीं हैं। सम्भवत: उनके पास यदि होते तो उनमें स्वामी दयानन्द का जीवन, स्वामीजी के चारित्रिक गुणों के कारण सर्वोत्तम है। वर्तमान में उनके यह सभी जीवन चरित अन्य सभी महापुरुषों से गुण-कर्म व स्वभाव में सर्वोत्तम हैं। **प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी द्वारा मास्टर लक्ष्मण आर्योपदेशक के उर्दू जीवन चरित का हिन्दी अनुवाद करके इसे प्रकाश में लाने के लिए समस्त आर्य जगत् उनका ऋणी है।** हम यह भी कहना चाहते हैं कि प्रा. जिज्ञासु जी ने साहित्य के सृजन में जो तप व पुरुषार्थ किया है वह अब अपनी आयु के 82 वें वर्ष में भी कर रहे हैं, वह आर्य जगत् के सभी लोगों व विद्वानों के लिए अनुकरणीय है।

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी आर्य जगत् के सभी विद्वानों एवं सामान्य आर्यजनों के सम्माननीय, आदरणीय एवं सत्कार योग्य विद्वान् हैं। सभी को उनके ग्रन्थों का अध्ययन कर उससे लाभ लेना चाहिये। उनको पत्र आदि लिखकर उनके सभी कार्यों की प्रशंसा करनी चाहिये। इससे विद्वानों को प्रोत्साहन एवं स्फूर्ति मिलती है। उनसे फोन व पत्र द्वारा शंका समाधान भी करते रहनी चाहिये। आर्य समाज के सभी उत्सवों एवं सम्मेलनों में उन्हें आमंत्रित करते रहना चाहिये और उनसे सुझाव लेकर कार्यक्रम बनाने चाहिये। हम जिज्ञासुजी व उनके पारिवारिकजनों के अच्छे स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की कामना करते हैं और आशा करते हैं कि उनका आशीर्वाद सभी आर्यजनों को मिलता रहे। उनके नये-नये ग्रन्थ हमें मिलते रहें और हम उनकी लेखनी से, **"कुछ तड़प कुछ झड़प"** शीर्षक से उनके धारावाही विचार **"परोपकारी"** पत्रिका आदि के माध्यम से पाकर लाभान्वित होते रहें।

धर्म शब्द का मूल अर्थ

–डॉ० पूर्ण सिंह डबास

संस्कृत का **धर्म** शब्द '**धृ**' धातु पर आधारित है जो "(कसकर) पकड़ना, थामना, (पास में) रखना, थामे या पकड़े रहना, धारण करना, ग्रहण करना या ले जाना, सुरक्षित रखना, अधिकार में रखना, (से) युक्त होना, (का) स्वामी होना तथा (आत्मा या शरीर को) संरक्षित रखना" आदि अर्थों की बोधक है। ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में प्रयुक्त **दर,** ग्रीक भाषा में प्रयुक्त **थ्रो** या **थ्रॉ** तथा लैटिन भाषा में प्रयुक्त **फ्रे** संस्कृत की **धृ** धातु के सगोत्री माने गए हैं। धर्म के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के **धृत, धृति, धृत्री, धर, धरा धरणी, धरणि, धारक, धारण** तथा **धारणा** आदि अन्य अनेक शब्द भी इसी धातु से बनते हैं। इस प्रकार **धृ** धातु पर आधारित **धर्म** शब्द का व्याकरणिक दृष्टि से अर्थ हुआ–**जो सुस्थापित या दृढ़ है, दृढ़ आदेश, नियम, विधि, व्यवहार, लोकाचार, प्रथागत या परम्परागत नियमों का अनुपालन, कर्त्तव्य, अधिकार, न्याय, गुण, विशेषता, नैतिकता, सदाचार तथा सत्कर्म आदि।** संक्षेप में धर्म वह है जो **धारणीय** है, **आचरणीय** है, **वरणीय** है और इसके साथ ही **रक्षणीय है।**

हमारी भाषा में प्रचलित धर्म शब्द के विभिन्न प्रयोग भी इन अर्थों की पुष्टि करते हैं। उदाहरण के लिए जब हम किसी शासक, से 'राजधर्म' का पालन करने की अपेक्षा करते हैं तो यहाँ धर्म का अर्थ राजा के 'कर्त्तव्य' या शासकीय 'नियम' हैं। जब हम किसी राजा या सत्ताधारी को 'धर्मराज' कहते हैं तो यहाँ धर्म का अर्थ 'न्याय' है। 'धर्माचार्य' में धर्म का अर्थ है विविध-विधान तथा रीति-नीति और आचार्य वह है जो इनकी शिक्षा देता और अनुपालन करता है। जब हम उद्घोष करते हैं कि 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो' तो यहाँ पर, अधर्म (दोष, पाप दुष्कृत) के विपरीत, धर्म के अंतर्गत आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्र के वे सभी नियम, मूल्य तथा सुकृत्य आ जाते हैं जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी होते हैं। 'परोपकार करना हमारा धर्म है, संकट में किसी की सहायता करना मनुष्य का धर्म है' तथा 'विद्यार्थी का धर्म', 'क्षात्र धर्म' 'पातिव्रत धर्म' और 'आपदधर्म' तथा 'सत्यंवद धर्मचर' (सच बोल और कर्त्तव्य पथ पर चल) जैसी सूक्तियों में धर्म शब्द कर्त्तव्य, करणीय कर्मों या गुणों का बोधक है। इसी प्रकार 'बिच्छू का धर्म डसना है', 'जल का धर्म शीतलता है, अग्नि का धर्म जलाना है, शरीर का धर्म नश्वरता है और आत्मा का धर्म अमरता है' जैसे प्रयोग इनके स्वभाव, सहजात या प्रकृत गुण अथवा अभिलक्षण आदि अर्थों की ओर संकेत

करते है। जब हम बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो यहाँ धर्म शब्द उन आस्थाओं, मान्यताओं, और निमयों आदि का बोध कराता है जिन पर हिन्दू, बौद्ध, ईसाई तथा मुसलमान लोग विश्वास करते हैं।

धर्म का वास्तविक स्वरूप :

अब प्रश्न उठता है कि धर्म का वह कौन-सा रूप है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए सहज रूप से स्वीकार्य और कल्याणकारी हो, जो संसार की विधायिका परमशक्ति को आधार मानते हुए मानव मात्र के भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग दिखाता हो। स्वाभाविक है ऐसा धर्म किसी एक व्यक्ति, ग्रंथ या स्थान विशेष पर केन्द्रित नहीं हो सकता। **ऐसा धर्म वही हो सकता है जो स्थान और काल की सीमाओं से परे सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो।** आइए अब चर्चा करें कि धर्म का ऐसा सम्पूर्ण रूप कौ-सा है। मानव मात्र के हित को ध्यान में रखते हुए धर्म-शास्त्रों में ऐसे धर्म की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं जिनमें से प्रमुख नीचे प्रस्तुत की जा रही हैं:

1. धरति लोकान :–अर्थात् 'जो लोक को धारण करता है या दृढ़ता पूर्वक थामता है वह धर्म है।' इसका अभिप्राय: यह है कि वे गुण, नियम या जीवन-मूल्य जिन्हें अपनाकर यह संसार सुचारू रूप से चलता है, धर्म कहलाते हैं। **'धरति लोकान'** का ही रूपांतरण **'ध्रियते अनेन लोका: इति'** भी संस्कृत में प्रचलित है। अर्थ वही है कि **एक श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था के लिए जो भी श्रेष्ठ विधान हो सकता है वह धर्म है।**

2. यत: अभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि स धर्म:–वैशेषिक दर्शन (1-1-2) में दी गई इस परिभाषा का अर्थ है–'जिससे अभ्युदय या भौतिक समृद्धि तथा नि:श्रेयस या आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति होती है वह धर्म है।' इस परिभाषा का सार भी यही है कि जो नियम, व्यवहार या आचरण व्यक्ति को प्रत्येक दृष्टि से सक्षम और पवित्र बनाते हुए लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से उसका कल्याण करते हैं, उन्हीं का नाम धर्म है।

ऊपर दी गई धर्म की दोनों परिभाषाएँ एक प्रकार से धर्म की परिणामात्मक परिभाषाएं हैं जो धर्म के विषय में सीधी बात न कहकर उसे कौन धारण करता है और उसका उद्देश्य क्या है, इन बातों की ओर संकेत करती हैं। जैसे कि धर्म वह है जो लोक को धारण करता है या दृढ़ता पूर्वक थामता है तथा धर्म वह है जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि होती है। वे कौन से नियम या गुण

हैं जो लोक को धारण करते हैं या जिनसे भौतिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, उनका संकेत इन परिभाषाओं में नहीं है।

3. वस्तु स्वभाव धर्म :–इसका अर्थ है कि किसी के वास्तविक या प्राकृतिक गुण अर्थात् वे गुण जो उसे प्रकृति से ही मिले हैं या मूलतः जैसा उसका 'स्वभाव' है वही उस वस्तु का धर्म है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु के विधायक आंतरिक तत्त्व, जिन पर उसका अस्तित्व या व्यक्तित्व निर्भर है उस वस्तु का धर्म कहलाता है। उदाहरण के लिए अग्नि का धर्म है तपाना, जलाना तथा प्रकाशित करना। यदि अग्नि से उसके ये धर्म या गुण निकाल लिए जाएँ तो वह अग्नि नहीं रहेगी, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

इस परिभाषा को मनुष्य पर लागू करें तो कहा जा सकता है कि भूख, प्यास, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, भय शोक, चिंता, हिंसा तथा साथ ही प्रेम, स्नेह, करुणा, उदारता तथा जिज्ञासा आदि जन्मजात वृत्तियाँ या स्वभाव मनुष्य के धर्म हैं और अगर ये विशेषताएँ या धर्म उससे निकाल लिए जाएँ तो वह मनुष्य नहीं रहेगा। यह परिभाषा मनुष्य पर किस सीमा तक लागू होती है इस पर आगे समीक्षा में विचार किया जा रहा है।

ऊपर धर्म की जो परिभाषाएँ उद्धृत की गई हैं उनका सार यह है कि वे गुण, नियम, कर्त्तव्य या जीवन-मूल्य धर्म हैं जिन्हें धारण करने पर संसार की व्यवस्था ठीक चलती है, जिन नियमों को अपनाने से व्यक्ति का भौतिक और साथ ही आध्यात्मिक उत्थान होता है वे धर्म हैं तथा किसी वस्तु की मूलभूत विशिष्टताएँ अथवा सहजात गुण या तत्त्व उसके धर्म कहलाते हैं। जैसा कि ऊपर भी संकेत किया गया है कि इन परिभाषाओं में उन गुणों, नियमों या कर्त्तव्यों का उल्लेख नहीं है जो धर्म के उक्त उद्देश्यों को पूरा करते हैं और न ही उन प्रक्रियाओं की चर्चा की गई है जो किसी वस्तु की मूलभूत विशिष्टताओं, और यदि व्यक्ति के संदर्भ में कहें तो उसकी सहजात वृत्तियों का संस्कार-परिष्कार करती हैं। लेकिन धर्म की जो परिभाषाएँ या अभिलक्षण नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं उनमें धर्म की सिद्धि कराने वाले नियमों या प्रक्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

4. ध्रियते पुण्य अत्मिभिः वा–इस परिभाषा के अनुसार धर्म उन गुणों का नाम है जिन्हें पुण्य (पवित्र) आत्माओं के द्वारा धारण किया जाता है अथवा पवित्र मन एवं विचारों वाले व्यक्तियों के गुण ही धर्म कहलाते हैं।

5. आचारः परमो धर्मः श्रुति उक्तः स्मार्त एव च–मनुस्मृति के पहले अध्याय में दी गई धर्म की इस परिभाषा के अनुसार 'वेद और स्मृति ग्रंथों में कहा गया–आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'

'इस प्रकार आचरण (सदाचरण) से ही धर्म की गति (प्राप्ति) देखकर मुनियों ने सभी तपस्याओं का परम मूलाधार आचरण को ही स्वीकार किया है।' इस आचरण का स्रोत और कसौटी जहाँ श्रुति और स्मृति ग्रंथों को स्वीकार किया गया है वहाँ राग-द्वेष रहित सत् पुरुषों तथा विद्वानों का व्यवहार भी इसकी कसौटी है। मनुस्मृति के पहले अध्याय में ही मनु कहते हैं–

जिसको सत्यपुरुष, रागद्वेष रहित विद्वान् अपने हृदय से अनुकूल जानकर सेवन करते हैं उसी (आचरण) को तुम लोग धर्म जानो।

6. वेद, स्मृति, सदाचार (सत्यपुरुषों का आचरण) और अपनी आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रिय आचरण, ये धर्म के चार लक्षण हैं अर्थात् इन चारों के द्वारा ध र्म लक्षित होता है।

7. 'प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तथा स्मरण, इन पाँच का योग ही धर्म है।'

8. ऊपर ही गई धर्म की विभिन्न परिभाषाओं या विवेचनों से स्पष्ट है कि इन में उल्लिखित धर्म के लक्षणों की संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। ऊपर संख्या पाँच में 'आचार' को ही धर्म का एक मात्र लक्षण या आधार बताया गया। संख्या छः में धर्म के चार लक्षण बताए गए और संख्या सात में पाँच लक्षणों का उल्लेख किया गया। इन से आगे बढ़कर मनु ने धर्म के दस लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा है–

धैर्य, सहनशीलता या सहिष्णुता, स्वयं पर काबू या आत्म संयम, चोरी न करना अर्थात् बिना अधिकार या अनुमति के किसी की कोई वस्तु न लेना, शारीरिक और मानसिक पवित्रता, इंद्रियों को सीमाओं में या नियंत्रण में रखना, बुद्धिविनाश के व्यवहारों से अलग रहकर बौद्धिक विकास करना, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, मन, वचन, कर्म से सत्य का ग्रहण, तथा क्रोध को छोड़ते हुए शांति का वरण', ये दस लक्षण धर्म के हैं।

9. गीता में धर्म शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। गीता का आरंभ ही धर्म ('धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता ययुत्सवः–') शब्द से होता है और बीच में भी इसका अनेक बार उल्लेख हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए:

(1) "धर्म के नष्ट होने पर संपूर्ण कुल को अधर्म तिरष्कृत कर देता है।" (1-39)

(2) "और अपने धर्म को देखकर भी तुम को युद्ध से हटना योग्य नहीं.. (2-31)

(3) "यदि तुम इस धर्म पूर्वक युद्ध को न करोगे...(2-33)

(4) "दूसरे का धर्म भली प्रकार अनुष्ठान किया गया भी हो उससे अपना धर्म बिना गुणों वाला भी श्रेष्ठ होता है...।" (3-35)

(5) 'हे भारत जब-जब धर्म की हानि होती है...।' (4-7)

(6) '...धर्म के स्थापन के लिए प्रत्येक युग में होता हूँ।' (4-8)

(7) '...हे भरतर्षभ सर्वप्राणियों में धर्म में जो विरोध नहीं रखता वह काम मैं हूँ। (7-11)

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि गीता में धर्म के महत्त्व, स्थापना, रक्षा तथा वरण करने आदि की चर्चा तो है लेकिन उसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं मिलती। साथ ही इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि **गीता** में धर्म शब्द का प्रयोग, इसके आधुनिक काल में प्रचलित मजहब या रिलिजन अर्थ से भिन्न 'कर्त्तव्य तथा किसी व्यक्ति या वस्तु का मूल स्वभाव' जैसे अर्थों में किया गया है। हाँ, महाभारत में अन्यत्र धर्म की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं जिनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जा रही हैं-

(1) धर्म का सार सुन और सुनाकर उसे धारण कर। **जो व्यवहार अपने या अपनी आत्मा के प्रतिकूल लगता है वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति न कर।**

(2) इसी प्रकार जब युधिष्ठिर भीष्म पितामह से पूछते हैं–हे पितामह! कौन से ऐसे धर्म हैं जो सभी वर्णों के लिए उपयोगी हो सकते हैं, चारों वर्णों के पृथक धर्म कौन-से हैं तथा राजा द्वारा पालनीय धर्म कौन-कौन से माने गए हैं, तो भीष्म उत्तर देते हैं–

'बिना दी हुई वस्तु को न लेना, दान देना, (वेद का) अध्ययन करना, तप करना अर्थात् द्वन्द्वों को सहना, अहिंसा, सत्य क्रोध न करना तथा यज्ञ करना, ये–सब धर्म के लक्षण हैं। यहाँ उल्लिखित आठ लक्षणों में से सत्य, क्रोध न करना, बिना दी हुई वस्तु को न लेना अर्थात् अस्तेय, वेदों का अध्ययन अर्थात् विद्या तो वही है जिनका उल्लेख मनु ने धर्म के दस लक्षणों में किया है। तप का समावेश भी मनु द्वारा उल्लिखित दम तथा इंद्रिय निग्रह में हो जाता है। केवल अहिंसा, दान तथा यज्ञ, तीन ऐसे हैं जो मनु के द्वारा गिनाए गए लक्षणों से अलग हैं।

(3) सभी वर्णों के लिए समान रूप से उपयोगी धर्मों को गिनाते हुए भीष्म कहते हैं–

अक्रोध, सत्य बोलना, बाँटकर उपभोग, क्षमा, अपनी ही पत्नी से संतानोत्पत्ति अर्थात 'संयम, द्रोह न करना अर्थात् वैर-विद्वेष का अभाव, शुचिता या पवित्रता, सरल स्वभाव, नौकर-चाकर या आश्रितों का भरण पोषण ये नौ धर्म सभी वर्णों के हैं। यहाँ भी अक्रोध, सत्य, क्षमा तथा शौच वे ही हैं जिनको मनु पहले बता

चुके हैं। 'अपनी ही पत्नी से संतानोत्पत्ति' का समावेश 'इंद्रिय निग्रह' तथा 'दम' में हो जाता है। इसी प्रकार 'अद्रोह' तथा मनु द्वारा उल्लिखित 'अक्रोध' में कोई तात्त्विक अंतर नहीं है। साथ ही जो धृति, क्षमा, अस्तेय तथा सत्य युक्त होगा स्वाभाविक है वह ऋजु या सरल होगा ही। इस प्रकार महाभारत के इन धर्म-लक्षणों में 'बांट कर उपभोग' तथा 'आश्रितों का भरण पोषण' ही कुछ नए कहे जा सकते हैं।

(4) इसके बाद **शांति पर्व** के इस प्रसंग में मनोनिग्रह को ब्राह्मण का धर्म, प्रजाओं का सब प्रकार से पालन और लुटेरों का वध आदि क्षत्रिय का धर्म, पवित्रता पूर्वक धन कमाना तथा पुत्रों की रक्षा करने वाले पिता की तरह सब प्रकार के पशुओं का पालन आदि वैश्य का धर्म, अपने लिए मठ या कुटी न बनवाकर निरंतर घूमते रहना आदि संन्यासी का धर्म तथा राज-धर्म आदि अनेक धर्मों की चर्चा की गई है। महाभारत की इस चर्चा से भी यह सर्वथा स्पष्ट है कि धर्म का अर्थ कोई उपासना पद्धति, मत या संप्रदाय आदि न होकर कर्त्तव्य या करणीय कर्म हैं।

ऊपर दी गई परिभाषाओं या लक्षणों को सार रूप में, क्रमशः इस प्रकार कहा जा सकता है–

1. वे नियम, गुण या कर्त्तव्य जिनके आधार पर यह संसार सुचारू रूप से चलता है धर्म कहलाते हैं।
2. पुण्य या पवित्र आत्माओं के गुण ही धर्म हैं।
3. उन नियमों, व्यवहारों या आचरणों का नाम धर्म है जिनसे भौतिक समृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होती है।
4. किसी वस्तु का स्वाभाव या उसके सहजात या मूल गुण उसके धर्म हैं।
5. श्रुति एवं समृति ग्रंथों पर आधारित आचरण ही धर्म है।
6. श्रुति, समृति, सदाचार और अपनी आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध आचरण, ये धर्म के चार लक्षण हैं।
7. प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तथा स्मरण इन पाँच का अनुपालन धर्म है।
8. धृति या धैर्य, क्षमा या सहिष्णुता, आत्मा संयम बिना अधिकार के किसी की वस्तु को न लेना, शुचिता या पवित्रता, इंद्रियों पर नियंत्रण, बौद्धिक विकास, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, सत्य का ग्रहण, क्रोध त्यागकर शांति का वरण, ये धर्म के दस लक्षण हैं। कभी-कभी इनमें अहिंसा को जोड़कर ग्यारह लक्षण माने गए हैं।
9. (1) जो व्यवहार स्वयं को अनुकूल न लगे, दूसरों से भी वैसा व्यवहार न

करना धर्म है।

(2)अहिंसा, सत्य, अक्रोध (वेदों का) अध्ययन, तप, अहिंसा, दान तथा यज्ञ ये अंतिम तीन ही मनु द्वारा उल्लिखित लक्षणों से भिन्न हैं। शेष का समावेश, जैसी कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है। मनु द्वारा बताए गए लक्षणों में हो जाता है।

(3) अक्रोध, सत्य, क्षमा, शौच, अद्रोह, बाँटकर उपभोग, सरलता, आश्रितों का भरण-पोषण तथा अपनी पत्नी से ही संतानोत्पत्ति ये नौ धर्म सभी वर्णों के हैं। (इन में भी बाँटकर उपभोग तथा आश्रितों का पोषण ये ही कुछ नए हैं। शेष मनु के बताए लक्षणों में समाविष्ट हैं।)

जैसा कि ऊपर भी संकेत किया जा चुका है, क्रम संख्या एक तथा दो में धर्म की जो परिभाषएँ दी गई हैं वे परिणामात्मक हैं, अर्थात् वे गुण, कर्त्तव्य, आचरण या नियम जिनके धारण करने के परिणाम स्वरूप यह संसार सुचारू रूप से चलता है, जिनसे व्यक्ति पवित्र बनता है तथा जिनसे व्यक्ति को अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, धर्म कहलाते हैं। लेकिन वे गुण, कर्त्तव्य आचरण या नियम कौन-से हैं, उनकी चर्चा इन परिभाषाओं में नहीं है।

क्रम संख्या तीन पर दी गई परिभाषा–'वस्तु स्वभाव धर्मः' (अर्थात् किसी वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है) यहाँ विशेष रूप से विचारणीय है। जैसा कि वस्तु शब्द से स्पष्ट है, मूलतः यह परिभाषा 'वस्तु' या पदार्थों के संदर्भ में दी गई है। इसे व्यक्ति पर लागू करें तो सिद्धांततः तो यह विचार ठीक है लेकिन यहाँ एक शंका पैदा होती है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि स्वभावों या धर्मों को यथावत् रूप में धारण करने वाले मनुष्य का रूप क्या वैसा ही रूप कहा जा सकता है जैसा कि एक आदर्श मनुष्य के लिए और उसकी श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था के लिए काम्य या अपेक्षित है? क्या विश्व की प्रत्येक चिंतन धारा मनुष्य को उसकी काम, क्रोध, लोभ तथा हिंसा आदि सहजात वृत्तियों से दूर रहने या बचने का निर्देश और उपदेश नहीं देती? क्या हम मनुष्य को मनुर्भव कहकर, जैसा वह जन्मा है उससे बेहतर बनाने की कामना नहीं करते? उसे द्विज बनाकर क्या हम वैचारिक दृष्टि से उसका परिष्कार–संस्कार करने का यत्न नहीं करते? इन तथा ऐसे अन्य प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक ही होगा। ऐसी स्थिति में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वस्तुओं या पदार्थों के संबंध में तो यह परिभाषा पूर्णतः ठीक है लेकिन मनुष्य के संबंध में धर्म इतने तक सीमित न होकर कुछ और आगे तक पहुँचता है। यहीं तक सीमित रह जाना वस्तुस्थितिगम धर्म है काम्य या वांछनीय धर्म नहीं है। **–क्रमशः**

विविध सुरुचिपूर्ण साहित्य

श्रुति सौरभ	पं. शिवकुमार शास्त्री	१५०.००
स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती का जीवन वृत्त	प्रेमलता भटनागर	१५०.००
श्रीमद्दयानन्द प्रकाश (विद्यार्थी संस्करण)	स्वामी सत्यानन्द	११०.००
सत्योपदेशमाला (सम्पादकः प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु')	स्वामी सत्यानन्द	१२५.००
समाज का कायाकल्प	प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०.००
वेदों का यथार्थ स्वरूप	स्वामी धर्मानन्द जी	१२५.००
स्वाध्याय संहिता	श्री हरिप्रसाद वैदिक मुनि	३००.००
मनुस्मृतेः मानवार्षभाष्यम्	डॉ. इंदिरा रमेण	३००.००
सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत	महाकवि जयगोपाल	२००.००
पुरुषसूक्त का विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. कुसुमलता आर्या	२००.००
वेद गीताञ्जली	पं. सत्यकाम वेदालंकार	१००.००

आचार्य अभयदेव विद्यालंकार कृत मार्मिक पुस्तकें

वैदिक विनय (दो रंगों में)	२५०.००
ब्राह्मण की गौ	१७५.००
वैदिक उपदेश माला	२०.००

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत महर्षि चरित

महर्षि दयानन्द चरित (सचित्र)	४५०.००

महात्मा चैतन्यमुनि कृत सरल-सुबोध साहित्य

एकादशोपनिषद् : १००१ प्रश्नोत्तर	१५०.००
श्रीमद्भगवद्गीता : १००१ प्रश्नोत्तर	१५०.००
पूर्ण व्यक्तित्व का आधार : १६ संस्कार	१५.००
मुमुक्षुत्व का महत्त्व	१२.००

स्वामी वेदानन्दतीर्थ कृत आध्यात्मिक पुस्तकें

स्वाध्याय सन्दीप	३५०.००
स्वाध्याय सन्दोह	२५०.००

पं. वीरसेन वेदश्रमी कृत तलस्पर्शी साहित्य

वैदिक सम्पदा	३००.००
वैदिक सूक्त-माला	१२.००

पं० लक्ष्मणजी आर्योपदेशक कृत खोजपूर्ण साहित्य

मत मतान्तरों का मूलस्रोत–वेद	८०.००
स्वामी दयानन्द के प्रेरक प्रसंग	१५०.००

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत विज्ञान सम्मत पुस्तकें

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	१७५.००
वैदिक संस्कृति का सन्देश	१२५.००
सत्य की खोज	९५.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	४०.००
Confidential Talks to Young Men	४५.००

जुलाई २०१४ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

विशेष प्रचारित ग्रन्थ रत्न

मेरे पिता (संस्मरण)	पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति	८०.००
महर्षि दयाननन्द	पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति	८०.००
वैदिक सिद्धान्तों पर सहेलियों की वार्ता	पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२५.००
कल्याण मार्ग का पथिक	स्वामी श्रद्धानन्द	१२५.००
ईश्वरीय ज्ञानः वेद (नई)	प्रो० बालकृष्ण एम.ए.	२००.००
आर्यपथिक लेखराम (नई)	स्वामी श्रद्धानन्द	९५.००
स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (संशोधित)	स. स्वामी जगदीश्वरानन्द	४००.००
दयानन्द चित्रावली (सचित्र)	पं. रामगोपाल विद्यालंकार	६०.००
निःसन्देह सर्वव्यापक है ईश्वर!	श्रीमती गार्गी वर्मा	५०.००
स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	२२५.००
न्यायदर्शन की मान्यताएँ	डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया	५०.००
वैदिक चिन्तन धारा (नई)	डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया	४०.००
षड्दर्शन समन्वय	डॉ. प्रशान्त आचार्य	१००.००
सन्ध्या योग ब्रह्म साक्षात्कार (सचित्र)	ब्र. जगन्नाथ पथिक	३००.००
धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप	डॉ. रामावतार	१२५.००
याजुष् मन्त्रों में अध्यात्म भावना (लोकप्रिय)	डॉ. उमेश यादव	१५०.००
यज्ञ थैरेपी (संशोधित संस्करण)	संदीप आर्य	११०.००
संस्कार समुच्चय (संस्कार विधि की व्याख्या)	पं. मदनमोहन विद्यासागर	३००.००
वेद सौरभ	श्री गजानन्द आर्य	१००.००
उपनिषद् रहस्य (ग्यारह उपनिषदों का संकलन)	म० नारायण स्वामी	३३०.००
धर्म और विज्ञान	स्वामी ब्रह्ममुनि	५०.००
राजर्षि मनु व उनकी मनुस्मृति	सम्पादक : डॉ. सुरेन्द्र कुमार	१५०.००
त्याग की भावना	पं. धर्मदेव वेदावाचस्पति	३०.००
सन्ध्या पथ	श्री देवनारायण भारद्वाज	२०.००
महापुरुषों के जीवन से सीखें	आचार्य अभिमन्यु	२५.००
भारत में मूर्तिपूजा	पं. राजेन्द्र	४०.००
नये युग की ओर आर्यसमाज	डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे	८०.००
दयानन्द प्रश्नोत्तर-संवादनिधिः	पं. सत्यानन्द वेदवागीश	९५.००

पं. भगवद्दत्त कृत शोधपूर्ण साहित्य

वैदिक वाङ्मय का इतिहास (कालजयी ग्रन्थ)	
(तीन खण्डों में पुनः प्रकाशित)	१२००.००
प्रथम खण्ड–अपौरुषेय वेद तथा शाखा	रु. ४००.००
द्वितीय खण्ड-वेदों के भाष्यकार	रु. ४००.००
तृतीय खण्ड-ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ	रु. ४००.००
भारतीय संस्कृति का इतिहास	१००.००
भाषा का इतिहास	१५०.००

प्रकाशक–अजयकुमार, मुद्रक–अजयकुमार, स्वामी–अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली–6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स–अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली–6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र–दिल्ली।